<u>भ्रमर गीत</u>

दशमस्कंध, अध्यायः ४७

गोप्युवाच

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥१२॥

रे मधुप, तू कपटीका सखा है; इसलिए तू भी कपटी है । तू हमारे पैरोंको मत छू । झूठे प्रणाम करके हमसे अनुनय-विनय मत कर । हम देख रही हैं कि श्रीकृष्णकी जो वनमाला हमारी सौतोंके वक्षःस्थलके स्पर्शसे मसली हुई है, उसका पीला-पीला कुंकुम तेरी मूछोंपर भी लगा हुआ है । तू स्वयं भी तो किसी कुसुमसे प्रेम नहीं करता, यहाँ-से-वहाँ उड़ा करता है । जैसे तेरे स्वामी, वैसा ही तू ! मधुपति श्रीकृष्ण मथुराकी मानिनी नायिकाओंको मनाया करें, उनका वह कुंकुमरूप कृपा-प्रसाद, जो यदुवंशियोंकी सभामें उपहास करनेयोग्य है, अपने ही पास रखें । उसे तेरे द्वारा यहाँ भेजने कि क्या आवश्यकता है ? ॥१२॥

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा
सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् ।
परिचरति कथं तत्पादपद्मं नु पद्मा ह्यपि
बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥१३॥

जैसे तू काला है, वैसे ही वे भी हैं । तू भी पुष्पोंका रस लेकर उड़ जाता है, वैसे ही वे भी निकले । उन्होंने हमें केवल एक बार- हाँ, ऐसा ही लगता है- केवल एक बार अपनी तनिक-सी मोहिनी और परम मादक अधरसुधा पिलायी थी और फिर हम भोली-भाली गोपियोंको छोड़कर वे यहाँसे चले गये । पता नहीं; सुकुमारी लक्ष्मी उनके चरणकमलोंकी सेवा कैसे करती रहती हैं ! अवश्य ही वे छैल- छबीले श्रीकृष्णकी चिकनी- चुपड़ी बातोंमें आ गयी होंगी। चितचोरने उनका भी चित्त चुरा लिया होगा ॥१३॥

भ्रमर गीत

दशमस्कंध, अध्यायः ४७

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूना-
मधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ।
विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसंगः
क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥१४॥

अरे भ्रमर ! हम वनवासिनी हैं । हमारे तो घर-द्वार भी नहीं हैं । तू हमलोगोंके सामने यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्णका बहुत-सा गुणगान क्यों कर रहा है ? यह सब भला हम लोगोंको मनानेके लिये ही तो ? परन्तु नहीं- नहीं, वे हमारे लिये कोई नये नहीं हैं । हमारे लिए तो जाने- पहचाने, बिलकुल पुराने हैं । तेरी चापलूसी हमारे पास नहीं चलेगी । तू जा, यहाँ से चला जा और जिनके साथ सदा विजय रहती है, उन श्रीकृष्णकी मधुपुरवासिनी सखियोंके सामने जाकर उनका गुणगान कर । वे नयी हैं, उनकी लीलाएँ कम जानती हैं और इस समय वे उनकी प्यारी है; उनके हृदयकी पीड़ा उन्होंने मिटा दी है । वे तेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगी, तेरी चापलूसीसे प्रसन्न होकर तुजे मुँहमाँगी वस्तु देंगी ॥१४॥

दिवि भुवि च रसायां कास्त्रियस्तद्दुरापाः
कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का अपि च
कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥१५॥

भौरें! वे हमारे लिये छटपटा रहे हैं, ऐसा तू क्यों कहता है ? उनकी कपटभरी मनोहर मुसकान और भौहोंके इसारे से जो वशमें न हो जायँ, उनके पास दौड़ी न आवें- ऐसी कौन-सी स्त्रियाँ हैं? अरे अनजान ! स्वर्गमें, पातालमें और पृथ्वीमें ऐसी एक भी स्त्री नहीं हैं । औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं लक्ष्मीजी भी उनके चरणरजकी सेवा किया करती हैं । फिर हम श्रीकृष्णके लिये किस गिनतीमें है ? परन्तु तू उनके पास जाकर कहना कि 'तुम्हारा' नाम तो 'उत्तम श्लोक' है, अच्छे-अच्छे लोग तुम्हारी कीर्तिका गान करते हैं; परन्तु इसकी सार्थकता तो इसीमें है कि तुम दीनोंपर दया करो । नहीं तो श्रीकृष्ण ! तुम्हारा 'उत्तम श्लोक' नाम झूठा पड़ जाता है ॥१५॥

भ्रमर गीत

दशमस्कंध, अध्यायः ४७

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारै-
रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका
व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन् ॥१६॥

अर्थः- अरे मधुकर ! तू मेरे पैरपर सिर मत टेक । मैं जानती हूँ कि तू अनुनय-विनय करनेमें, क्षमा-याचना करनेमें बड़ा निपुण है । मालूम होता है तू श्रीकृष्णसे ही यही सीखकर आया है कि रूठे हुए को मनानेके लिए दूतको- संदेशवाहकको कितनी चाटुकारिता करनी चाहिए । परन्तु तू समझ ले कि यहाँ तेरी दाल नहीं गलनेकी । देख, हमने श्रीकृष्णके लिये ही अपने पति, पुत्र और दूसरें लोगोंको छोड़ दिया । परन्तु उनमें तनिक भी कृतज्ञता नहीं । वे ऐसे निर्मोही निकले कि हमें छोड़कर चलते बने ! अब तू ही बता ऐसे अकृतज्ञके साथ क्या सन्धि करें ? क्या तू अब भी कहता है कि उन पर विश्वास करना चाहिये ?॥१६॥

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा
स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद् ध्वाङ्क्षवद् य-
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥१७॥

ऐ रे मधुप ! जब वे राम बने थे, तब उन्होंने कपिराज बालिको व्याधके समान छिपकर बड़ी निर्दयतासे मारा था। बेचारी शूर्पणखा कामवश उनके पास आयी थी, परन्तु उन्होंने अपनी स्त्रीके वश होकर उस बेचारीके नाक-कान काट लिये और इस प्रकार उसे कुरूप कर दिया । ब्राह्मणके घर वामनके रूपमें जन्म लेकर उन्होंने क्या किया ? बलिने तो उनकी पूजा की, उनकी मुँहमाँगी वस्तु दी और उन्होंने उसकी पूजा ग्रहण करके भी उसे वरुणपाशसे बाँधकर पातालमें डाल दिया। ठीक वैसे ही, जैसे कौआ बलि खाकर भी बलि देनेवालेको अपने अन्य साथियोंके साथ मिलकर घेर लेता है और परेशान करता है । अच्छा, तो अब जाने दे; हमें श्रीकृष्णासे क्या, किसी भी काली वस्तुके साथ मित्रतासे कोई प्रयोजन नहीं है। परन्तु यदि तू यह कहे कि 'जब ऐसा है तब तुमलोग उनकी चर्चा क्यों करती हो ?' तो भ्रमर ! हम सच कहती हैं, एक बार जिसे उसका चसका लग जाता है, वह उसे छोड़ नहीं सकता। ऐसी दशामें हम चाहनेपर भी उनकी चर्चा छोड़ नहीं सकतीं ॥१७॥

भ्रमर गीत

दशमस्कंध, अध्यायः ४७

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥१८॥

श्रीकृष्णकी लीलारूप कर्णामृतके एक कणका भी जो रसास्वादन कर लेता है, उसके राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि सारे द्वन्द्व छूट जाते हैं । यहाँतक कि बहुत-से लोग तो अपनी दुःखमय दुःख से सनी हुई घर-गृहस्थी छोड़कर अकिञ्चन हो जाते हैं, अपने पास कुछ भी संग्रह-परिग्रह नहीं रखते और पक्षियोंकी तरह चुन-चुनकर भीख माँगकर अपना पेट भरते हैं, दीन-दुनियासे जाते रहते हैं । फिर भी श्रीकृष्णकी लीलाकथा छोड़ नहीं पाते । वास्तवमें उसका रस, उसका चसका ऐसा ही है । यही दशा हमारी हो रही हैं ॥१८॥

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः
कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ।
दद्दशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र स्मररुज
उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता ॥१९॥

जैसे कृष्णसार मृगकी पत्नी भोली-भाली हरिनियाँ व्याधके सुमधुर गानका विश्वास कर लेती हैं और उसके जालमे फँसकर मारी जाती हैं; वैसे ही हम भोली-भाली गोपियाँ भी उस छलिया कृष्णकी कपटभरी मीठी- मीठी बातोंमें आकर उन्हें सत्यके समान मान बैठीं और उनके नखस्पर्शसे होनेवाली कामव्याधिका बार-बार अनुभव करती रहीं । इसलिए श्रीकृष्णके दूत भौंरे ! अब इस विषयमें तू और कुछ मत कह । तुझे कहना ही हो तो कोई दूसरी बात कह ॥१९॥

भ्रमर गीत

दशमस्कंध, अध्यायः ४७

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय
किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ।
नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं
सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥२०॥

हमारे प्रियतम प्यारे सखा ! जान पड़ता है तुम एक बार उधर जाकर फिर लौट आये हो । अवश्य ही हमारे प्रियतमने मनानेके लिये तुम्हें भेजा होगा । प्रिय भ्रमर ! तुम सब प्रकारसे हमारे माननीय हो । कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है? हमसे जो चाहो सो माँग लो । अच्छा, तुम बताओ, क्या हमें वहाँ ले चलना चाहते हो ? अजी, उनके पास जाकर लौटना बड़ा कठिन है । हम तो उनके पास जा चुकी हैं । परन्तु तुम हमें वहाँ ले जाकर करोगे क्या ? प्यारे भ्रमर ! उनके साथ- उनके वक्षः स्थलपर तो उनकी प्यारी पत्नी लक्ष्मीजी सदा रहती हैं न ? तब वहाँ हमारा निर्वाह कैसे होगा ? ॥२०॥

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते स्मरति
स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ।
क्वचिदपि स कथा नः किङ्किरीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु ॥२१॥

अच्छा, हमारे प्रियतमके प्यारे दूत मधुकर ! हमें यह बतलाओ कि आर्यपुत्र भगवान् श्रीकृष्ण गुरुकुलसे लौटकर मधुपुरीमें अब सुखसे तो हैं न ? क्या वे कभी नन्दबाबा, यशोदारानी, यहाँके घर, सगे -सम्बन्धी और ग्वालबालोंकी भी याद करते हैं ? और क्या हम दासियोंकी भी कोई बात कभी चलाते हैं ? प्यारे भ्रमर! हमें यह भी बतलाओ कि कभी वे अपनी अगरके समान दिव्य सुगंधसे युक्त भुजा हमारे सिरोंपर रखेंगे ? क्या हमारे जीवनमें कभी ऐसा शुभ अवसर भी आयेगा ? ॥२१॥